Dr. Vandana Suman
Associate professor
Dept. of Philosophy
H.D. Jain College, Ara
B.A. Part – III (Hons)
Paper – VI
Social and political Philosophy

"Caste"
(जाति)

भारतीय सामाजिक संस्थाओं में 'जाति' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आदिकाल से ही भारत में जातिप्रथा का प्रचलन रहा है। पाश्चात्य देशों में सामाजिक स्तरीकरण का आधार वर्ग रहा है तो भारत में जाति एवं वर्ण। जाति शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द 'Caste' का हिन्दी अनुवाद है। अंग्रेजी के Caste शब्द की व्युत्पत्ति पुर्तगाली भाषा के 'Casta' शब्द से हुई है जिसका अर्थ मत विभेद तथा जाति से लिया जाता है। जाति शब्द की उत्पत्ति का पता सन् 1665 में ग्रेसिया डी आर्टा नामक विद्वान ने लगाया। उसके बाद फ्रांस के अब्बे डुबॉय ने इसका प्रयोग प्रजाति के सन्दर्भ में किया। मजुमदार एवं मदान के अनुसार, "जाति एक बन्द वर्ग है।" कूले के शब्दों में, "जब एक वर्ग पूर्णतः आनुवंशिकता पर आधारित होता है, तो हम उसे जाति कहते हैं।"

'जाति' एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसकी सदस्यता जन्म पर आधारित होती है और जो अपने सदस्यों पर खान-पान, विवाह, पेशा सम्बन्धी अनेक प्रतिबन्ध लागू करती है। भारत में जाति का स्वरूप इतनी विभिन्नता लिए हुए है कि इसकी कोई भी सर्वमान्य परिभाषा करना कठिन है। यही कारण है कि कई विद्वानों ने जाति की परिभाषा देने के बजाय विशेषताओं का उल्लेख किया है। ऐसे विद्वानों में हट्टन, दत्ता, घुरिये, आदि प्रमुख हैं।

एन. के दत्ता ने जाति की अनेक संरचनात्मक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का उल्लेख किया है। (1) एक जाति के सदस्य जाति के बाहर विवाह नहीं कर सकते। (2) प्रत्येक जाति में दूसरी जातियों के साथ खान-पान के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध होते हैं। (3) अधिकांश जातियों के पेशे निश्चित

होते हैं। (4) जातियों में ऊँच नीच का एक संस्तरण होता है जिसमें ब्राह्मणों की स्थिति सर्वमान्य रूप से शिखर पर है। (5) व्यक्ति की जाति जन्म के आधार पर ही जीवन भर के लिए निश्चित होती है केवल जाति के नियमों को तोड़ने पर ही उसे जाति से बहिष्कृत किया जा सकता है। अन्यथा एक जाति से दूसरी जाति की सदस्यता ग्रहण करना असम्भव है। (6) सम्पूर्ण जाति-व्यवस्था ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा पर आधारित है।

डॉ. घुरिये ने जाति की छः विशेषताओं का उल्लेख किया है:

(1) समाज का खण्डात्मक विभाजन (Segmental division of Society) - जाति-व्यवस्था ने भारतीय समाज को विभिन्न खण्डों में विभाजित कर दिया है और प्रत्येक खण्ड के सदस्यों की स्थिति, पद तथा कार्य निश्चित हैं। घुरिये कहते हैं कि खण्ड-विभाजन से तात्पर्य है - एक जाति के सदस्यों की सामुदायिक भावना सम्पूर्ण समुदाय के प्रति न होकर अपनी ही जाति तक सीमित होती है। (2) संस्तरण (3) भोजन तथा सामाजिक सहवास पर प्रतिबन्ध (Restrictions on feeding and social intercourse) (4) नागरिक एवं धार्मिक निर्योग्यताएँ एवं विशेषाधिकार (Civil and Religious disabilities and Privileges) (5) पेशे के अप्रतिबन्धित चुनाव का अभाव (Lack of unrestricted choice of occupation) (6) विवाह-सम्बन्धी प्रतिबन्ध (Restriction on Marriage)

जाति व्यवस्था केवल हमारे देश तक ही सीमित नहीं है। थोड़े बहुत संशोधित रूप में जाति व्यवस्था पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल, मलेशिया, ईरान आदि में भी पायी जाती है।

हमारे देश में मूल से ही जाति व्यवस्था सामाजिक सम्बन्धों की एक

केन्द्रीय व्यवस्था रही है। भारतीय इतिहास का यदि कोई सर्वेक्षण किया जाये तो ज्ञात होगा कि प्राचीन युग में भी जाति व्यवस्था का कोई न कोई स्वरूप एक स्तरीकरण के रूप में हमारे देश में उपलब्ध था। प्रारम्भ में इसका स्वरूप वर्ण व्यवस्था में मिलता है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में एक विवरण मिलता है जिसमें कहा है कि चार वर्णों की उत्पत्ति स्वयं ब्रह्मा से हुई है। ब्राह्मणों की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से हुई है क्षत्रियों की भुजाओं से, वैश्यों की जंघाओं से और शूद्रों की पैरों से। ये चार वर्ण भारतीय समाज का पहला स्तरीकरण था। यह एक प्रकार का श्रम विभाजन था जिसमें ब्राह्मण का कार्य एक पुरोहित करते थे। वे ईश्वर की उपासना भारतीय समाज के कल्याण के लिये करते थे। क्षत्रियों का यह उत्तरदायित्व था कि वे बाहरी आक्रमण और आन्तरिक कलह से जन-जीवन को सुरक्षा प्रदान करें। वैश्यों का कर्तव्य था कि वे आर्थिक विकास को आगे बढ़ायें। शूद्र का कर्तव्य समाज की सेवा करना था।

वर्तमान में जाति का स्वरूप विघटित हो रहा है किन्तु प्राचीनकाल में जाति ने व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। हट्टन ने जाति द्वारा किये जाने वाले कार्यों को तीन भागों में विभक्त किया है: (1) व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित कार्य (2) जातीय समुदाय के लिए कार्य (3) समाज और सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए जाति द्वारा किये जाने वाले कार्य।

1 सदस्यों के व्यक्तिगत जीवन में जाति के कार्य या लाभ

जाति व्यक्ति के जीवन पर अमिट प्रभाव डालती है और उसका अन्य लोगों से सम्बन्ध निर्धारण करती है। व्यक्ति के लिए

notes
Phone
email
website

जाति अनेक कार्य करती है:

(1) सामाजिक स्थिति का निर्धारण — जाति के आधार पर ही व्यक्ति की समाज में स्थिति निर्धारित होती है जिसे सम्पत्ति, निर्धनता, सफलता असफलता और व्यक्तिगत गुण-दोष के आधार पर बदला नहीं जा सकता। यह सामाजिक स्थिति तब तक बनी रहती है जब तक कि वह जाति के नियमों का उल्लंघन न करे।

(2) मानसिक सुरक्षा — जाति प्रत्येक व्यक्ति का पद और कार्य जन्म से ही निश्चित कर देती है। प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि उसे किस समूह में विवाह करना है, किस प्रकार के सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक कार्यों में भाग लेना है, यह सब पूर्व-निर्धारित होने से व्यक्ति को मानसिक सन्तोष एवं सुरक्षा प्राप्त होती है।

(3) व्यवसाय का निर्धारण — प्रत्येक जाति का एक परम्परागत व्यवसाय होता है। इसलिए व्यक्ति के सामने व्यवसाय चुनने की समस्या नहीं होती और न ही व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा पायी जाती है। बचपन से व्यक्ति को जातीय व्यवसाय का प्रशिक्षण मिलने से वह उसमें दक्ष हो जाता है।

(4) वैवाहिक समूह का निर्धारण — जाति ही यह तय करती है कि व्यक्ति अपना जीवन-साथी किस समूह में से चुनेगा, इस सन्दर्भ में व्यक्ति को जातीय नियमों का पालन करना होता है।

(5) सामाजिक सुरक्षा — प्रत्येक जाति की एक जाति पंचायत एवं जाति संगठन होता है। व्यक्ति पर किसी भी प्रकार का संकट आने, बीमारी, बुढ़ापा एवं दुर्घटना के समय जाति के सदस्य व्यक्ति की सहायता करते हैं।

(6) व्यवहारों पर नियंत्रण — प्रत्येक जाति के अपने कुछ नियम एवं प्रतिबन्ध होते हैं जिनके द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों को नियंत्रित किया जाता है। जातीय नियमों का उल्लंघन करनेवाले

को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है।

2. जाति समुदाय से सम्बन्धित कार्य या लाभ। जाति व्यक्ति के लिए ही नहीं वरन सम्पूर्ण जाति समुदाय के लिए भी अनेक कार्य करती है:

(1) धार्मिक भावना की रक्षा - प्रत्येक जाति के देवी - देवता एवं धार्मिक विधि-विधान होते हैं जिनकी जाति के सदस्य प्राण - प्रण से रक्षा करते हैं। सामान्य मान्यता यह है कि यह जाति ही है जो जनता के धार्मिक जीवन में अपने सदस्यों की स्थिति को निश्चित करती है।

(2) रक्त की शुद्धता बनाये रखना - एक जाति के व्यक्ति अपनी ही जाति में विवाह करते हैं इससे रक्त की शुद्धता बनी रहती है और अन्य जातियों के रक्त दोष नहीं आ पाते हैं।

(3) सामाजिक स्थिति का निर्धारण - प्रत्येक जाति अपने सदस्य के लिए जाति संस्तरण में निश्चित सामाजिक स्थिति को निर्धारित करती है। मजूमदार एवं मदन लिखते हैं कि "सामूहिक प्रयत्न और आन्दोलन के लिए एक सामान्य संगठन के निर्माण द्वारा स्वयं की जाति के व्यक्ति के लिए गतिशीलता अवसर बढ़ाती हैं। इसप्रकार कायस्थ, जो अब उत्तर भारत में ब्राह्मणों के बाद ही समझे जाते हैं, 19वीं शताब्दी में केवल एक परिष्कृत शूद्र जाति थी।"

(4) संस्कृति की रक्षा - हट्टन कहते हैं प्रत्येक जाति की अपनी एक सामान्य संस्कृति रही है जिसके अन्तर्गत उस जाति - विशेष का ज्ञान, कार्य-कुशलता, व्यवहार, आदि आते हैं ये सब जाति में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होते रहते हैं, क्योंकि अपने नये सदस्यों को ये सब सिखा देते हैं। इस प्रकार प्रत्येक

जाति अपनी संस्कृति की स्थिरता को बनाये रखती है।

(5) जातीय एकता की प्रोत्साहन — जाति अपनी सदस्यों की एकता के सूत्र में बाँधती है, आवश्यकता के समय आर्थिक एवं अन्य की सहायता करते हैं, जाति के सदस्यों की भलाई के लिए जाति — विद्यालय, धर्मशालायें, चिकित्सालय, छात्रावास, आदि का निर्माण किया जाता है।

3. सम्पूर्ण समाज या राष्ट्र के लिए कार्य या लाभ:

(1) समाज का विकास और रक्षा में सहायक — जाति-व्यवस्था ने हिन्दू समाज की रक्षा की है और सदस्यों को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य भी किया है। बलमी फरनीवाल के अनुसार "जाति प्रथा के कारण भारत एक बहु समाज (A Plural Society) स्थिर रह पाया है। जाति व्यवस्था ने समाज को ऐसी व्यवस्था प्रदान की है जिसमें कोई भी समुदाय, चाहे वह प्रजातीय हो या सांस्कृतिक, सामाजिक हो, व्यावसायिक हो या धार्मिक अपनी विशिष्ट प्रकृति और पृथक सत्ता को बनाये रखते हुए अपने को समग्र समाज के एक सहयोगी अंग के रूप में उपयुक्त बना चुका है।" समय-समय पर भारत में बाह्य आक्रमणकारी आते रहे, उनसे सारे समाज की रक्षा का कार्य जाति ने किया है और बाह्य समूह समाज के ही अंग बनकर रह गये।

(2) राजनीतिक स्थिरता — किसी भी देश में जब बाह्य आक्रमणकारियों का शासन स्थापित होता है तो वे वहाँ राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन लाते हैं, किन्तु भारत इसका अपवाद है। यहाँ समय-समय पर कई आक्रमणकारी आये लेकिन जाति ने इन आक्रमणकारियों से भारत की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक रक्षा की है।

(3) श्रम-विभाजन — जाति-व्यवस्था में विभिन्न जातियों के बीच कार्य-विभाजन किया गया है, इससे इनमें दक्षता एवं विशेषीकरण पनपा है।

पुनर्जन्म एवं कर्म की धारणा के कारण जाति के कार्यों की पूर्ति की जाती है। व्यक्ति यह जानता है कि पिछले जन्म के आधार पर इस जन्म में जाति एवं व्यवसाय विशेष प्राप्त हुआ है यदि इसे ठीक ढंग से किया गया तो अगले जन्म में उच्चजाति मिलेगी।

(4) धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता— धर्म के आधार पर विश्व के विभिन्न भागों में समय-समय पर अनेक क्रान्तियाँ हुई हैं। भारत में भी अनेक धार्मिक सम्प्रदायों का प्रचलन रहा है किन्तु सभी सम्प्रदाय हिन्दू जाति-व्यवस्था में ही आत्मसात हो गये। इसका प्रमुख कारण जाति-व्यवस्था में पायी जाने वाली सहिष्णुता एवं उदारता है।

(5) अन्तर्विवाह की प्रेरणा — जाति व्यवस्था ने लोगों को अपने-अपने जातिगत अन्तर्जातीय विवाह की प्रेरणा दी है।

(6) जाति ने ही सम्पूर्ण देश की संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित कर उसे स्थिरता प्रदान की है।

जाति प्रथा की हानियाँ अथवा दोष भी अनेक हैं:

(1) श्रमिक की गतिशीलता में बाधक— चूँकि प्रत्येक जाति का एक परम्परागत व्यवसाय होता है और व्यक्ति को जाति से बाहर के व्यवसायों को अपनाने की मनाही होती है, अतः दूसरे व्यवसायों में रुचि होने पर भी व्यक्ति अपने जातिगत व्यवसाय को बदल नहीं सकता।

(2) श्रमिक की कुशलता में बाधक— जाति-प्रथा में खान-पान सम्बन्धी अनेक निषेध हैं जिनका कुप्रभाव श्रमिकों की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता पर पड़ता है।

(3) आर्थिक विकास में बाधक— जाति प्रथा के कारण व्यक्तियों में श्रम विभाजन

कठिनाई का भी लाभ नहीं हो पाता। उच्च जातियों के लोग कारखानों में निम्नलोगों नहीं करना चाहते। वे जातीय आधार पर विरोधी दल बनाते हैं, जातिवाद के कारण योग्य लोगों को आगे बढ़ने का अवसर नहीं मिलता है और अयोग्य व्यक्ति उच्च पदों पर पहुँच जाते हैं। ये सभी स्थितियाँ देश के औद्योगिक विकास में बाधक हैं।

(4) राष्ट्रीय एकता में बाधक — जाति व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पूर्ण समाज छोटे-छोटे भागों में बँटा होता है प्रत्येक जाति राष्ट्रीय हितों के स्थान पर जातीय हितों को प्राथमिकता देती है, जाति-प्रथा ने ही समाज में छुआछूत एवं ऊँच नीच की भावना पैदा की है और विभिन्न जातियों के लोगों को परस्पर मिलने नहीं दिया है। इसकारण लोगों में राष्ट्रीय एवं प्रेम की भावना का विकास नहीं हो पाता है। जातिवाद की भावना ने राष्ट्रीय एकीकरण में बाधा उपस्थित की है।

(5) प्रजातन्त्र विरोधी (6) निम्न जातियों का शोषण (7) धर्म परिवर्तन (8) समाज का विभाजन, (9) सामाजिक समस्याओं का जन्म (10) अस्पृश्यता, (11) प्रगति में बाधक, (12) स्त्रियों की गिरी हुई दशा।

वर्तमान समय में जाति में अनेक परिवर्तन हुए हैं और जाति में नवीन प्रवृत्तियों का उदय हुआ है।

(1) ब्राह्मणों की स्थिति में गिरावट (2) जातीय संस्तरण में परिवर्तन (3) पेशों के चुनाव में स्वतन्त्रता (4) भोजन-सम्बन्धी प्रतिबन्धों में परिवर्तन (5) जन्म के महत्व में कमी (6) विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्धों में परिवर्तन (7) अस्पृश्य जातियों के अधिकारों में वृद्धि (8) जातीय समितियों का निर्माण (9) जातियों के बदलते हुए सम्बन्ध।

इसप्रकार हम देखते हैं कि भारत में जाति व्यवस्था एक गतिशील संस्था है जो समय एवं परिस्थितियों के साथ सदैव परिवर्तित होती रही है और आनेवाले समय में भी यह आवश्यकता के अनुरूप अपने को ढालने में समर्थ है।